भारतीय संगीत में अवनद्ध वाद्यों की भूमिका एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

DR. VANDANA JOSHI
Asst. Prof.. & Campus Head (Music)
Music Department
Kumaun University
S.S.J. Campus Almora, 263601
(Uttarakhand)

शोध पत्र सारांश – भारतीय संगीत प्राचीन काल से ही अपनी समृद्धि एवं श्रेष्ठता के लिए प्रसिद्ध रहा है। भारतीय संगीत में गायन, वादन तथा नृत्य तीनों कलाओं में ताल की विशिष्ट भूमिका मानी गयी है। लय व ताल के बिना स्वरोत्पत्ति सम्भव नहीं है। आदिग्रंथों के आधार पर वाद्यों के चार प्रकार माने गये हैं। तत, सुषिर, अवनद्ध, और घन, इनमें से अननद्ध वाद्यों की संगीत में विशिष्ट भूमिका है। प्राचीन ग्रंथों में अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। वैदिक काल में संगीत के लिखित रूप का प्रमाण मिलता है। रामायण काल तथा महाभारत काल में विभिन्न अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख मिलता है। जैसे– मृदंग, पणव, दुन्दुभी, हुडुक, ढोल, ढोलकी आदि। भरत मुनिकृत नाट्यशास्त्र, शारंगदेवकृत, संगीत रत्नाकर आदि ग्रंथों में विभिन्न प्रकार के वाद्यों का उल्लेख इस बात का प्रमाण देते हैं कि आदि काल से ही मनुष्य अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति वाद्यों के माध्यम से करता आया है। संगीत के क्षेत्र में लय व ताल हेतु अवनद्ध वाद्यों का विशिष्ट महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रस्तावना– आदि काल से प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से संगीत विद्यमान है। एलोरा तथा एलिफेन्टा की चित्रकारी एवं मोहनजोदड़ों की खुदाई से प्राप्त हुए भग्नावशेष इस बात के साक्षात प्रमाण हैं, कि आदि काल से मानव संगीतरत था। संगीत का इतिहास अत्यन्त प्राचीन काल से जुड़ा हुआ है। वैदिक युग में भी सामवेदीय ऋचाओं का गान, विविध प्रकार के वाद्य–यन्त्रों सहित किया जाता था। समय के साथ–साथ वाद्यों में भी परिवर्तन आने लगा। संगीत प्रारम्भ से ही नादात्मक था तथा आध्यात्म के निकट था। इसीलिए पुराणों में इस बात का संकेत प्राप्त होता कि देवी सरस्वती वीणा वादिनी है, श्री गणेश मृदंग वादक है तथा महादेव शिव डमरू–वादक है। यहाँ पर स्पष्ट है कि अवनद्ध वाद्य पूर्व काल से संगीत में सम्मिलित है।

शोध समस्या– भारतीय संगीत में अवनद्ध वाद्यों की भूमिका एवं उसके ऐतिहासिक पक्ष को शोध द्वारा जन सम्मुख प्रस्तुत करना।

की–वर्डस – अवनद्ध वाद्य (अर्थात् ऐसे वाद्य, जो कि चमड़े द्वारा मढ़े होते हैं तथा उसमें आघात करने से ध्वनि की उत्पत्ति होती है)

शोध प्रविधि– प्रस्तुत शोध पत्र की प्रविधि वर्णनात्मक है।

शोध रूपरेखा– विभिन्न ग्रंथों में उल्लिखित प्राप्त सामग्री द्वारा शोध कार्य को प्रमाणिक बनाने का प्रयास किया गया है।

भारतीय संगीत प्राचीन काल से ही अपनी समृद्धि एवं श्रेष्ठता के लिए प्रसिद्ध रहा है। हमारे संगीत का इतिहास सदा से ही अनूठा रहा है। भारतीय संगीत में गायन, वादन, नृत्य तीनों कलाओं का सुन्दर समावेश प्राचीन समय से ही माना गया है। इन तीनों कलाओं में ताल की विशिष्ट भूमिका मानी गयी है। विभिन्न प्रकार की तालों से तथा भिन्न–भिन्न लयों के प्रयोग से संगीत में रसों का संचार होता है तथा आनन्द की सृष्टि होती है। ताल मनुष्य की अभिव्यक्ति को सार्थक बनाती है।

आदिकाल से भारतीय संगीत में वाद्यों का अपना विशिष्ट स्थान रहा है। अजन्ता, एलोरा और एलिफेन्टा की चित्रकारी, मोहनजोदड़ो के भग्नावशेष तथा आदि कालीन ग्रंथ सामवेद इसके प्रमाण स्वरूप हैं। संगीत रत्नाकर नामक ग्रन्थ के आधार पर वाद्य चार प्रमुख भागों में विभाजित किये जा सकते हैं। तत, सुषिर, अवनद्ध और घन।

'वाद्यतन्त्री ततं वाद्यं सुषिरं मतम्।
चर्मावनद्ध वदनमवनद्ध तु वाद्यते
घनोमूर्तिः साऽभिधाताद्वधते यत्र तद्वनम्।।'

–संगीत रत्नाकर

'तत् वाद्य' में तारों द्वारा ध्वनि उत्पन्न होती है। जिन वाद्यों में स्वरोत्पत्ति वायु द्वारा होती है, वे 'सुषिर वाद्य' कहलाते हैं। भारतीय वाद्यों का तीसरा प्रकार 'अवनद्ध वाद्यों' का है। इसमें मढ़े हुए चमड़े की खाल को आघात करने से ध्वनि उत्पन्न होती है। वाद्यों का अन्तिम प्रकार 'घनवाद्य' है। इसमें किसी धातु अथवा लकड़ी से स्वरोत्पत्ति होती है।[1]

संगीत का इतिहास अत्यन्त प्राचीन काल से जुड़ा हुआ है। संगीत का प्राचीन इतिहास ई0पू0 3500 के लगभग आरम्भ होता है। इस काल के पूर्व में भी देश में अपनी सभ्यता व संस्कृति थी, परन्तु उसके विषय में जानकारी नहीं मिलती है, इसलिए उस काल को 'अन्धकार युग' कहा गया है। इस युग के व्यक्ति लोक कला तथा संगीत को भली भाँति जानते थे। 'अगसा' नामक एक वाद्य का उल्लेख (जो कि मंजीरे के आकार का होता था) इस काल में मिलता है, जो कि गान के समय प्रयुक्त होता था।

संगीत का लिखित रूप से उल्लेख वैदिक युग में मिलता है। इस युग का आरम्भ आर्यों के आगमन से माना जाता है। विभिन्न विद्वानों के मतभेद इस विषय को लेकर हैं।

पुराणों के साथ–साथ धर्म, सभ्यता, संस्कृति के आधार पर भारतीय विद्वानों ने वेदों का अपना 'आधार ग्रंथ' बनाया। ऋग्वेद, यर्जुवेद, अर्थवेद और सामवेद– इन चारों वेदों में सामवेद ही संगीत से भरपूर ग्रंथ है। सामवेद में उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित– इन तीन स्वरों का उल्लेख है तथा यह पूर्णतः गेय था। सामवेद की ऋचाऐं विशेष मंत्रोच्चारण के साथ संगीतात्मक ढंग से गायी–बजाई जाती थी। आगे चलकर एक–एक स्वर का विस्तार होने लगा तथा इस प्रकार सामगान सात स्वरों में होने लगा। इस युग में गायन के साथ विभिन्न वाद्यों का उल्लेख मिलता है। वैदिक काल में सामगान में ताल की संगति के लिए दुन्दुभि नामक चर्मवाद्य का प्रयोग भी होता था। श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण काल में मृदंग, ढोल, ढोलकी, भूमि ,भेरी, दुन्दुभि, मंडूक, पणव, डिण्डिम, सप्ततन्त्री, वीणा, विपंची वीणा आदि का उल्लेख मिलता है।

महाभारत ग्रंथ ऋषि व्यास की रचना है। भगवान कृष्ण की बांसुरी के उल्लेख के साथ–साथ मृदंग, पणव, दुन्दुभि, पट्ट भेरी, डिण्डिम, तोमर तथा वीणा आदि वाद्यों का उल्लेख भी मिलता है।[2]

भरत मुनि को संगीत का आदि आचार्य कहा जाता है। भारतीय संगीत का, इस काल के 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में (28–33 छः अध्यायों में) उल्लेख है। यह ग्रंथ नाट्यकला से सम्बन्धित है। (यह ग्रंथ 400 ई0पू0, 100 ई0) सन् के बीच का ग्रंथ माना जाता है। इसका समय विवादास्पद है) 36 अध्यायों में भरत ने रंगमंच, अभिनेता, अभिनय, नृत्य–गीत–वाद्य, दर्शक, दशरूपक और रस निष्पति से सम्बन्धित सभी तथ्यों का विवेचन किया है। इसमें 29 से 34 अध्याय तक गीत–वाद्य का विवरण मिलता है। आपने भी तत्, सुषिर, अवनद्ध व घन चारों वाद्यों के प्रकारों का उल्लेख किया है। नाट्यशास्त्र के अवनद्ध 'कुतुप' वाद्यों का 'झल्लरी' का नाम भी उल्लेख किया है।

वीणा तथा मुरज के अतिरिक्त शिवजी का सम्बन्ध डमरू' नामक अवनद्ध वाद्य से है। उत्तर भारत में अनेक वाद्य प्रचालित हैं। जैसे– शहनाई, सरोद, सुरबहार, जलतरंग, सुन्दरी, नलतरंग, काष्ठ–तरंग, गिटार तथा मेंडोलिन आदि। अब हम कुछ प्रसिद्ध अवनद्ध वाद्यों का वर्णन करेंगे। अवनद्ध वाद्य वे हैं, जिन्हें चमड़े द्वारा मढ़ा जाता है तथा उसमें आघात करने से ध्वनि निकलती है।

पखावज– पखावज भारत का विशेष अवनद्ध वाद्य है। मृदंग व पखावज एक ही वाद्य के दो नाम हैं अथवा इस पर विद्वानों के मतभेद हैं। संगीत एवं साहित्य के ग्रंथों में प्राचीन काल से ही मृदंग का उल्लेख मिलता है, लेकिन पखावज का उल्लेख 15वीं शताब्दी से पहले नहीं मिलता है।[3]

कहा जाता है कि अमीर खुसरों पखावज बजा रहे थे, उसी समय यह दो टुकड़ों में टूट गया। तब उन्होंने इन टुकड़ों को बजाने की कोशिश की, इस प्रकार तबले का जन्म हुआ। यह उत्तरी भारतीय शैली का ढोलक(ड्रम) है। यह मृदंग के आकार प्रकार का, परन्तु उससे कुछ छोटा एक प्रकार का बाजा है।[4]

अमीर खुसरो ने ही सितार एवं तबले का आविष्कार किया था। अवनद्ध वाद्यों का प्राचीन काल से संगीत के अतिरिक्त अन्य कई कार्यों के लिए प्रयोग होता है। भारत में कई आदिवासी क्षेत्रों में चर्माच्छादित वाद्य बजाकर लोग इन अवनद्ध वाद्यों को सांकेतिक भाषा के लिए भी प्रयुक्त करते थे। इन संकेतों की भाषा गोपनीय होती थी। प्राचीन समय में राजा द्वारा अभीष्ट विचार दूर–दूर तक स्थित इन अवनद्ध वाद्यों के द्वारा पहुँचाये जाते थे।[5]

भेरी– भेरी नामक कोणाकार चर्म से बना हुआ अवनद्ध वाद्य, आपत्तिजनक स्थिति में बजाये जाने को, दिया जाने वाला वाद्य है जो कि पहरेदारों, चौकीदारों को विशिष्ट अवसरों पर बजाने के लिए दिया जाता था।

नौबत– प्राचीन काल में रात्रिकाल में 'नौबत' नामक अवनद्ध वाद्य बजाये जाने की प्रथा थी।

मृदंग– पुराणों में मृदंग की उत्पत्ति के विषय में वर्णन मिलता है। देवाधिपति महादेव ने सतयुग में महाबली त्रिपुरासुर का घोर संग्राम में विनाश करके इन्द्र और अन्य देवताओं के सम्मुख, आनन्द से नृत्य किया था। त्रिपुरासुर–वध, के बाद उसके

रक्त से भीगकर जो कीचड़ उत्पन्न हुआ, उससे ब्रहमा ने सर्वप्रथम मृदंग का निर्माण किया और असुर के चमड़े का आच्छादन और अस्थियों का गुल्म उस वाद्य में लगाया। ब्रहमा के आदेशानुसार गणेश ने इस नवनिर्मित मृदंग वाद्य पर सर्वप्रथम ताल बजाया– 'मृत मृण्मयं अंग यस्य स मृदंगः' अर्थात् मृदंग मृत्तिकामय जिसका अंग है, वही मृदंग है। संगीत रत्नाकर में भी इसका समर्थन है।[6]

प्राचीन काल में मृदंग नामक ताल वाद्य का भारत में खूब प्रचार था। इसको भरत मुनि ने 'पुष्कर वाद्य' कहकर पुकारा था। इसी वाद्य पर शंकर भगवान ताण्डव नृत्य किया करते थे। प्राचीन 'पुष्कर' को लोग आजकल 'पखावज' कहने लगे। तबले के प्रचार से पहले ध्रुपद, धमार आदि गायन के साथ इस वाद्य का बजाना उचित समझा जाता था। आधुनिक समय में भी पखावज की संगत पसंद की जाती है। परन्तु ख्याल गायन के प्रचार के साथ तबले का प्रचार भी बढ़ता जा रहा है तथा पखावज का प्रचार कम होता जा रहा है। पखावज एक विशेष लकड़ी का बना होता है। इसकी लम्बाई लगभग ढाई अथवा सवा दो फुट होती है। पखावज के दोनों ओर चमड़े की पूड़ियाँ लगी रहती हैं। दोनों ओर की पूड़ियों को चमड़े की बद्दी अथवा रस्सी से कसा जाता है। अमीर खुसरों ने पखावज के दो हिस्से करके तबले का आविष्कार किया। पखावज पर दो प्रकार के वर्ण बजाये जाते हैं जिन्हें 'मुख्य' अथवा 'आश्रित' कहा जाता है।[7]

डमरूक– पं0 शारंगदेव ने डमरूक के लक्षण इस प्रकार बताये हैं– दीर्घता में वितस्त्रि प्रमाण का होना चाहिए। आठ अंगुल प्रभाव के दो मुख चमड़े से युक्त और मण्डली से युक्त हों। त्रिवली के समान जिसका मध्य स्थान कृश अर्थात् पतला हो, मध्य में रस्सी से उपनिबन्ध होता है। वादन के लिये मिट्टी और मोम की गोलक में लिपटी एक रस्सी टांगी जाती है। मध्य में दोनों हाथों से धारण करके उद्यवर्ण से युक्त बजाना चाहिए।

सोमेश्वर ने भी डमरू का इसी प्रकार उल्लेख किया है तथा 'डब–डब' अक्षरों का इसका वादन होता है।

' मध्य विधार्य हस्ताभ्यां वाद्यो डवडवाक्षरैः ' ।[8]

संगीत की विभिन्न विधाओं में विभिन्न वाद्यों का प्रयोग किया जाता है, जैसे– कर्नाटक में यदि मृदंग, पखावज, घट्म, मुख्य वाद्य हैं तो उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत म पखावज, तबला आदि मुख्य हैं। लोक संगीत में इन वाद्यों से एकदम अलग वाद्य प्रयोग में लाये जाते हैं जैसे– ढोल, नगाड़ा आदि प्रसिद्ध हैं।[9] एक ही प्रकार के लोक संगीत के अवनद्ध वाद्यों को भिन्न–भिन्न प्रकार के लोक कलाकार अलग–अलग प्रकार से बजाते हैं। संगीत के प्रचार और प्रसार में अवनद्ध वाद्यों ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

ढोल– प्राचीन ग्रंथों में ढोल वाद्य का निर्माण नहीं मिलता है। ढोल अनेक प्रकारों का तथा अनेक आकारों में होते हैं। कुछ जनजातियों में ढोल को छड़ी से बजाया जाता है। ढोल के मुखों पर चमड़ा मढ़ा होता है। गौंड जाति के लोग इसे दुमड़ी, मुरिया लोग 'परंग ढोल', दंडकारण्य में 'गांगा ढोल', भील और कोरकू लोगों में इसे केवल ढोल कहते हैं। महाराष्ट्र में बजने वाली नाल, तमिलनाडु का पम्बे, आंध्र प्रदेश का पम्बा, कर्नाटक और केरल का चेंग, असम में खोल, मणिपुर में पुंग आदि ढोल समान वाद्य है। वैसे मध्य प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, उत्तर प्रदेश, सभी जगह लोक संगीत में ढोल वाद्य इसी नाम का प्रयोग होता है।[10] सम्बल तबला के समान दो भागों में होता है तथा 'कमट' नगाड़ा जाति का वाद्य है।

अलाउद्दीन खिलजी के समय में ही पं0 शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर नामक ग्रंथ में गायन, वादन तथा नृत्य तीनों कलाओं का पूर्ण विवरण दिया है। संगीत रत्नाकर के तीसरे अध्याय में (वाद्य अध्याय में) चारों प्रकार के वाद्यों का वर्णन मिलता है।[11]

तबला– ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व की मैसोपोटामियन संस्कृति में 'तबालु' नामक प्राचीन तालवाद्य का उल्लेख मिलता है। बाद में यही तबालु सीरियन संगीत में स्पष्ट रूप से तबला कहलाया, जो रोम में मशहूर हुआ। अनुमान है कि अरेबियन 'तुबल', 'तब्ल'(अत्तबुल), 'अ–तब्ल', 'अतबल', अन्तबल, 'तिन्बूर', 'तुबुल' और तबला (डग्गा) इसी संस्कृति की देन है।[12]

'दि म्यूजिकल एण्ड म्यूजीकल इन्स्ट्रुमेंटल ऑफ दि अरब' के अनुसार 'अतवल' अरब के प्राचीन वाद्यों में गिना जाता था। अरब की 'नक्कोर' या 'नक्कार' को फ्रांस में नगारा और भारत में 'नक्कारा' व 'नगाड़ा बोला गया।[13] तबला या पखावज पर वादन छन्दों के आधार पर होता है। लय के साथ छन्दों की उत्पत्ति होती है। अवनद्ध वाद्य लय प्रधान है और अवनद्ध वाद्यों पर ताल का वादन किया जाता है।

तबला भारतीय संगीत में प्रयोग होने वाला एक तालवाद्य है जो मुख्य रूप से दक्षिण एशियाई देशों में बहुत प्रचलित है। अठारहवीं सदी के बाद से इसका प्रयोग शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय गायन–वादन में लगभग अनिवार्य रूप से हो रहा है। यह बाजा भारत, पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश और श्रीलंका में प्रचलित हैं। हालांकि इस वाद्य की वास्तविक उत्पत्ति विवादित है, जहाँ कुछ विद्वान इसे एक प्राचीन भारतीय परम्परा में ही उर्ध्वक आलिंग्यक वाद्यों का विकसित रूप मानते हैं, वहीं कुछ इसकी उत्पत्ति बाद में पखावज से निर्मित मानते हैं और कुछ लोग इसकी उत्पत्ति का स्थान पश्चिमी एशिया भी बताते हैं।

तालवाद्यों का वर्णन वैदिक–साहित्य से ही मिलना शुरू हो जाता है। दो या तीन अंगों वाला, डोरियों के सहारे लटकाकर हाथों से बजाये जाने वाले वाद्य यन्त्र 'पुष्कर'(अथवा 'पुष्कल') के प्रभाव पाँचवीं सदी में होने के प्रमाण मिलते हैं। अजंता गुफाओं के भित्ति चित्र जमीन पर रखकर बजाये जाने वाले, उर्ध्वमुखी ड्रमों का निरूपण करते हैं। बैठकर तालवाद्य बजाते हुए कलाकारों का ऐसा ही निरूपण एलोरा की प्रस्तर मूर्तियों में मिलता है।[14]

महर्षि भरत ने अपने नाट्य शास्त्र में आनद्ध 3 यों के अन्तर्गत मुख्य रूप से पुष्कर वाद्यों का वर्णन किया है। उन्होंने आनद्ध जाति के वाद्यों की संख्या एक सौ बताई है।

मानसोल्लास में मृदंग, हुडुक, मर्दल, पटट, हुडुक्का, ठक्का, डमरू, घटम, भेरी, दुन्दुभी, घडस को आनद्ध वाद्यों के अन्तर्गत माना है। संगीत में वाद्य को नाद का उपकरण माना जाता है। भरत मुनि के अनुसार वाद्यों को 'आतोद्य' भी कहते हैं।

संगीत रत्नाकर (2, 69–70) में आनद्ध वाद्यों में मृदंग, दुन्दुभि, भेरी, डमरू, पटह, चक्रवाद्य और हुडुक्का को मुख्य माना गया है। इस प्रकार संगीत ग्रन्थों में भिन्न–भिन्न नामों से अनेक प्रकार के आनद्ध वाद्यों का वर्णन मिलता है।[15]

भरत, दत्तिल तथा संगीत रत्नाकर के अनुसार वाद्यों के प्रकार चार माने गये हैं। संगीत रत्नाकर ग्रंथ में 'दुन्दुभि' को अवनद्ध वाद्यों की श्रेणी में रखा है।[16]

भारतीय संगीत में वाद्य को नाद का उपकरण माना जाता है। मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ वाद्य का क्रमिक विकास हुआ है। अवनद्ध वाद्य जो संगीत में 'लय' प्रदर्शित करने का माध्यम है, संगीत में इनके प्रयोग का उल्लेख वैदिक काल में भी मिलता है। उस काल में लय दिखाने के लिए 'भू–दुन्दुभि प्रयोग की जाती थी जिसमें जमीन में गड्ढा खोदकर उसे चमड़े में मढ़कर प्रयोग में लाते थे। उपनिषदों, रामायण, महाभारत, आदि प्राचीन ग्रंथों में भी अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख आता है। अवनद्ध वाद्य तंत्र, सुषिर वाद्यों से अधिक प्राचीन है और इसीलिए ऐसा प्रतीत होता है कि अवनद्ध वाद्यों में तन्त्री वाद्यों की अपेक्षा कम परिवर्तन हुए हैं। संगीत में प्राण डालने का कार्य ताल ही करती है, अतः इन्हीं सब प्रभावी कारणों से संगीत के क्षेत्र में, चाहे वह शास्त्रीय हो या उपशास्त्रीय, समस्त विधाओं में लय तथा ताल हेतु, अवनद्ध वाद्यों का विशिष्ट महत्वपूर्ण स्थान है।

इसके अतिरिक्त लोक संगीत में वाद्यों का महत्व शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। विशेषकर ताल वाद्यों का, जिनके अन्तर्गत घन तथा अवनद्ध वर्गों के वाद्य आते हैं।

सुगम संगीत में स्वरात्मकता तथा लय–संयम लाने का कार्य वाद्यों द्वारा ही किया जाता है। चाहे शास्त्रीय संगीत हो, उपशास्त्रीय और सुगम संगीत हो अथवा लोक संगीत हो, सभी प्रकार के संगीत में अवनद्ध वाद्य एक विशिष्ट भूमिका निर्वाहन करते है।

निष्कर्ष– निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से विभिन्न ज्ञानवर्धक तथ्य प्राप्त हुए हैं। विभिन्न प्रमाणों के द्वारा, अवनद्ध वाद्यों का गहन अध्ययन किया गया है। मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ अवनद्ध वाद्यों के क्रमिक विकास पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

सुझाव– प्रस्तुत शोध पत्र अवनद्ध वाद्य वादन के जिज्ञासु विद्यार्थियों के लिए एवं शोधार्थियों के लिए अत्यन्त ज्ञानवर्द्धक है। संगीत जगत के विद्वतजन इससे अवश्य ही लाभान्वित होंगे।

संदर्भ सूची :

(1) राग परिचय (भाग 3), श्रीवास्तव हरिश्चन्द्र, (2017), पृ0सं0 153–154.

(2) परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धान्तिक संगीत (गायन एवं वादन), (प्रथम संस्करण 2002) डा0 कौर भगवन्त, पृ0सं0– 09

(3) भारतीय संगीत की उत्पत्ति एवं विकास, डा0 बावरा जोगिन्द्र सिंह, ए.बी.एस. पब्लिकेशन, (प्रथम संस्करण 1994), पृ0सं0 241

(4) https://hi.m.wikipedia.org

(5) भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन डॉ0 सेन अरूण कुमार, मध्य प्रदेश ग्रंथ अकादमी, भोपाल, (द्वितीय संस्करण 1989), पृ0सं0 140

(6) वही, पृ0सं0 141

(7) संगीत शास्त्र दर्पण (द्वितीय भाग), गोवर्धन शान्ति, (1988), पृ0सं0 154–155

(8) भारतीय संगीत शास्त्रों में वाद्यों का चिंतन, डा0 भार्गव अर्चना, (प्रथम संस्करण 2002), पृ0सं0 168

(9) भारतीय संगीत की परम्परा, जोशी मंजरी, नेशनल ट्रस्ट इण्डिया, नयी दिल्ली, (2002), चौथी आवृति (2006), पृ0सं0 39

(10) सौन्दर्य रस एवं संगीत, शर्मा स्वतंत्र, प्रथम संस्करण (2005), पृ0सं0 284

(11) परम्परागत हिन्दुस्तानी सैद्धान्तिक (गायन एवं वादन), (2002), डा0 कौर भगवन्त, पृ0सं0 14–15

(12) संगीत निबन्ध सार, डॉ0 गर्ग लक्ष्मी नारायण, प्रथम संस्करण (2012), पृ0 सं0 194

(13) उपरोक्त, पृ0सं0 192

(14) https://hi.m.wikipedia.org

(15) भारतीय संगीत वाद्य, मिश्र लाल मणि, (2011), पृ0सं0 143

(16) भारतीय संगीत संग्रह, गोस्वामी शैलेन्द्र कुमार, (प्रथम संस्करण 2004), पृ0सं0 92–100